25 JUNE 1975

EMERGENCY DECLARED

INTERNAL DISTURBANCES

जब सिनेमा ने सच, संवेदना
और प्रतिरोध के स्वर को
परदे पर जिंदा रखा...

# आपातकाल में सिनेमा

1975 का दौर और भारतीय सिनेमा की
चेतना, सवाल और साहस की कहानियाँ

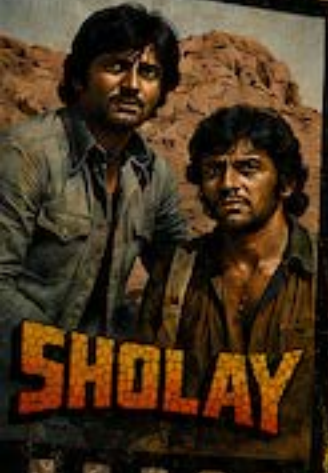

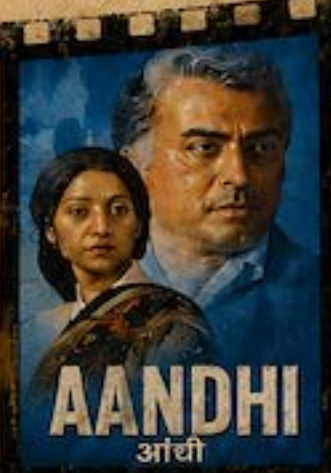


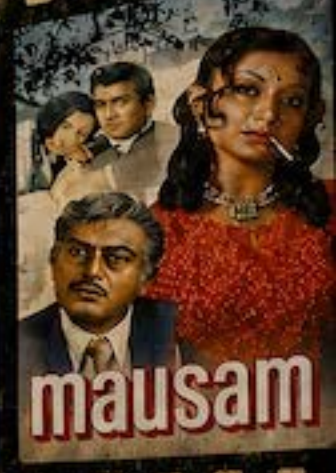

INDIRA IS INDIA
INDIA IS INDIRA

CENSORED

BY ORDER
CHIEF CENSOR

लेखक
संजीव श्रीवास्तव

# आपातकाल में सिनेमा

## संजीव श्रीवास्तव

*प्रकाशक: नॉटनल*

*प्रकाशन: जून, 2026*

*© संजीव श्रीवास्तव*

*पिहू-कुहू और कल्पना को समर्पित*

# अनुक्रम


| | |
|---|---|
| भूमिका | 5 |
| आपातकाल एक आईना | 7 |
| आज खुश तो बहुत होगे तुम! दीवार का दूसरा पहलू | 17 |
| शोले: इमोशनल और अधूरी कहानियां | 25 |
| हिंसा प्रधान शोले स्वतंत्रता दिवस पर क्यों रिलीज हुई? | 32 |
| ठाकुर के नहीं ‘कानून’ के हाथ कटे थे! | 39 |
| रामगढ़ स्मार्ट विलेज का फिल्मी मॉडल | 45 |
| हिंदी सिनेमा का रावण 'गब्बर' | 51 |
| शोले में ‘परिवार नियोजन’ का भी माखौल | 57 |
| जेलर के ‘हाहा’ की कहानी | 63 |
| महिला सशक्तिकरण की बिंदास बसंती | 68 |
| दूसरा गब्बर सिंह नहीं हो सकता | 73 |
| पर्दे पर कितनी बार इंदिरा सरकार? | 78 |
| इमरजेंसी के नाम पर सियासी आंधी | 84 |
| सिंहासन खाली करोsss की ‘वो’ कहानी | 91 |

आपातकाल में भी कलाकार दो खेमे में बंटे थे 96

जब देव आनंद ने इंदिरा गांधी से की बगावत 102

‘आंधी’ में इंदिरा गांधी की छवि? 108

निशांत-नसीर-स्मिता की पहली फिल्म 115

असली ‘धर्मात्मा’ और देशभक्त कौन? 120

सियासी आंधी में रोमांटिक ‘मौसम’ 126

अमिताभ-जया की सदाबहार ‘मिली’ 132

नफ़रत ने अमानुष बना के छोड़ा 139

गीत गाता चल- शोले की चिंगारी दबा न सकी 145

‘संतोषी मां मुझसे उम्र में छोटी’ 150

जब चला जूली का जादू 158

‘खुशबू’ एक फूल-सी कहानी 164

‘मजनूं’ मतलब ऋषि कपूर 170

‘छोटी सी बात’ में जिंदगी का तराना 175

# भूमिका

राजनीति-समाज-साहित्य-सिनेमा एक दूसरे से अलग नहीं हैं। सिनेमा के विषय भी समाज से ही आते हैं। यही वजह है कि हमारा सिनेमा जितना रोमांटिक भावनाओं को व्यक्त करने वाला रहा सामाजिक और राजनीतिक तौर पर भी उतना ही मुखर रहा है। हां, ये अलग बात है कि सिनेमा की मुखरता बहुत से लोगों को रास आती भी है और नहीं भी आती है।

भारतीय राजनीति में आपातकाल एक ऐसा दौर रहा है जब अभिव्यक्ति के सारे माध्यमों को कुचल दिया गया था। इससे सिनेमा भी प्रभावित हुआ। तब फिल्म इंडस्ट्री नहीं थी, उसे फिल्मनगरी कहा जाता था। उस दौर में कई फिल्में, कई गाने, कई कलाकार और अनेक फिल्मों के सीन प्रभावित हुए। इसकी लंबी दास्तां है। यहां तक कि आज की तरह तब भी फिल्मनगरी के कलाकार दो ध्रुवों में बंटे थे। एक पक्ष सत्ता समर्थक था तो दूसरा पक्ष सत्ता विरोधी।

इस पुस्तक में आपातकाल के दौरान की फिल्मों पर आलेख संकलित हैं। जाहिर है कि आपातकाल के पचास बरस बीत चुके हैं तो इन फिल्मों के भी पचास शानदार साल बीते हैं। आज से पचास साल पहले इन फिल्मों का कैसा प्रभाव था और आज की तारीख में भी इन फिल्मों का कैसा प्रभाव बना हुआ है- इसे बताने का प्रयास है। अपितु यह ई-बुक फॉर्मेट में फिलहाल संक्षिप्त रूप में है। जब इस पुस्तक का प्रिंट संस्करण हाथों में आएगा तब कुछ और अध्यायों के साथ आप सबके हाथों में होगा।

हमारा यह प्रयास आप सबको कैसा लगा। कृपया जरूर बताएं।

सादर।

***संजीव श्रीवास्तव***

*दिल्ली*

# आपातकाल एक आईना

उन्नीस सौ पचहत्तर देश के आधुनिक इतिहास में कई मायने में अहम साल है। इसे आंदोलनों और परिवर्तन का साल कहा जाता है। यहां से भारतीय राजनीति की दिशा बदलती है और सामाजिक ढांचे में भी बदलाव आता है। इसे भारत के भविष्य की नई बुनियाद रखने वाला साल के तौर पर गिना जाता है। इस साल देश भर में जितनी घटनाएं हुईं; कला, साहित्य और सिनेमा के क्षेत्र में जितनी रचनाएं सामने आईं उनमें आगामी कालखंड के उन्नयन की एक तरह से इबारत लिखी गई। राजनीतिक इतिहास में इस वर्ष को राष्ट्रीय आपातकाल के लिए याद किया जाता है। आपातकाल को अभिव्यक्ति पर हमले और आम नागरिक हनन के लिए उल्लेखित किया जाता है। वैसे इसी कालखंड में सबसे बड़े विद्रोह के साथ रचनात्मक विस्फोट भी देखने को मिलता है। इसे सामाजिक तौर पर युवाओं की हताशा और आक्रोश का साल समझा जाता है। जिस तरह से आपातकाल लागू होने की पृष्ठभूमि कुछ साल पहले से बनने लगी थी, उसी प्रकार सामाजिक हालात युवाओं की आकांक्षाओं को नया क्षितिज प्रदान कर रहे थे। कोई हैरत नहीं कि भारतीय सिनेमा पर भी इन सबका गहराई से प्रभाव पड़ा। अन्य कलाओं की तरह सिनेमा के लिए भी यह साल नई संरचना, नया वितान और नई चेतना के लिए अत्यंत उम्दा साबित हुआ। इस साल आई कालजयी फिल्मों के पचास साल पूरे हो रहे हैं। यह जानना जरूरी है कि आखिर ये आज भी उतने ही क्यों प्रासंगिक और यादगार बने हुए हैं।

## नैतिकता की दीवार तोड़ता गुस्सैल नायक

सन् पचहत्तर विभिन्न क्षेत्रों में नई प्रतिभाओं के उदय का साल था। निस्संदेह इसकी पृष्ठभूमि पहले से तैयार हो रही थी, जिसका सृजनात्मक स्फोट बड़े पैमाने पर इस साल होता है। इसका असर अगले कुछ साल की फिल्मों पर भी देखा जा सकता है। यह प्रवृत्ति एकदम से सन् पचहत्तर में पैदा होकर इसी साल गुम नहीं हो जाती बल्कि आने वाले सालों तक जारी रहती है। सिनेमा में विविधता का यह अनोखा साल था। तमाम किस्म की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं जिसने बाद के दौर में लोकप्रियता के आसमान को छुआ।

दिलचस्प बात यह कि ये सभी प्रवृत्तियाँ खूब प्रशंसित हुईं। कोई एक धारा किसी दूसरी धारा पर हावी नहीं होती दिखती। यहां नैतिकता की दीवार तोड़ने वाला गुस्सैल नायक का जन्म होता है, तो महिला नेतृत्व में राजनीतिक विद्रूप की आंधी आती है, विदेशी ढांचे में बदले की आग के शोले धधकते हैं तो जय संतोषी मां के रूप में नई धार्मिक चेतना का उन्मेष होता है, वहीं आडंबर पर प्रहार करता संन्यासी और धर्मात्मा का पर्दे पर अवतार होता है तो मनोरम गीत-संगीत की धारा लिये गीत गाता चल और उत्कट प्रेम कहानी लिये जुली आती है, जबकि निशांत के तौर पर यथार्थ का आईना दिखाने वाले कला सिनेमा का आगाज भी और चुपके-चुपके जैसी विशुद्ध हास्य। अचरज ये कि ये सारी विविधताएं मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा की नई बुनियाद बनती हैं। सिनेमा की भाषा में इसे ट्रेंड सेटर फिल्में कहते हैं। यहां से हिंदी सिनेमा का दौर बदलता है।

अमिताभ बच्चन सन् उन्नीस सौ तिहत्तर की ज़ंजीर से बेशक दर्शकों को चौंका चुके थे, एक क्रोधी नायक का जन्म हो चुका था लेकिन उनके क्रोध को सन् पचहत्तर में बड़ा कैनवस मिलता है, जब दीवार आती है। ज़ंजीर का इंस्पेक्टर विजय खन्ना जिस सिस्टम का शिकार होता है, दीवार का विजय वर्मा खुद उस सिस्टम का हिस्सा बन जाता है। दीवार समय के आर-पार हो जाती है। ज़ंजीर के विजय की नैतिकता रवि के हवाले कर दी जाती है, जिसे शशि कपूर ने निभाया था। यह विचारोत्तेजक अवधारणा उन्नीस सौ पचहत्तर की थी। दीवार इस साल गणतंत्र दिवस के मौके पर आती है। कहानी में गणतंत्र की विडम्बनाएं गुंथी थीं। दीवार के पार बहुत-सी कहानियां हैं। यह केवल दो भाइयों के बीच खड़ी दीवार नहीं है। बेरोजगारी की हताशा में नैतिक-अनैतिक आत्मनिर्भरता की होड़ से टूटते संयुक्त परिवार की विडम्बना है। दीवार सच और झूठ के बीच है, दीवार ईमादारी और बेईमानी के बीच है। राज कपूर ने आवारा में, देव आनंद ने काला बाजार में या महबूब खान ने मदर इंडिया के सुनील दत्त के किरदार में जो प्रतिनायक के बीज बोए थे, उसकी शाखा दीवार तक आते-आते फैल गई।

## शोले में लोहा ने लोहे को काटा

दीवार अकेली फिल्म नहीं थी, जिसमें सिस्टम को चुनौती दी जाती है, रमेश सिप्पी जब शोले लेकर आते हैं तो यहां भी एक पुलिस अधिकारी सिस्टम से बाहर निकल कर बदला लेने की ठानता है। ज़ंजीर का पुलिस इंस्पेक्टर विजय भी वर्दी त्याग कर उस तेजा से बदला